RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2018-20

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 42 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 19 जनवरी, 2020
विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत्
1960853120 दयानन्दाब्द : 195
वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 42, 16-19 जनवरी 2020 तदनुसार 6 माघ, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

जब भगवान को धारण करता था

ले.-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दु:शासुरागादिति घोष आसीत्।।

–ऋ० १०।३३।१

शब्दार्थ–कभी **मा** = मुझे भी **जनानाम्** = लोगों की **प्रयुजः** = उत्तम युक्तियाँ **प्र+युयुज्रे** = प्रयुक्त करती थीं, चलाती थीं, प्रेरित करती थीं। जब **जनानाम्** = ब्रह्माण्डों के **पूषणम्** = पालक, मार्ग-प्रदर्शक को **अन्तरेण** = अन्दर, हृदय से **वहामि स्म** = मैं धारण करता था, **अध** = तब **विश्वे** = सम्पूर्ण **देवाः** = विद्वान्, दिव्यगुण **माम्** = मुझको **अरक्षन्** = बचाते थे। तब **इति** = ऐसा **घोषः** = घोष, शोर **आसीत्** = था कि **दु:शासुः** = कठिनता से वश में होने वाला **आगात्** = आ गया है।

व्याख्या–प्रत्येक प्राणी किसी-न-किसी जन्म में अवश्य उत्तम गति का अनुभव कर चुका है। अनेक मनुष्य ऐसे होते हैं, जो उत्तम अवस्था में रहकर फिर नीचे गिर जाते हैं। धनी निर्धन हो जाते हैं। प्रमाद के कारण तपस्वी तपोभ्रष्ट हो जाते है। **'अनभ्यासे विषं विद्या'**= अभ्यास न करने से विद्या भी विष हो जाती है, अर्थात् अनभ्यास के कारण ज्ञानी का ज्ञान लुप्त हो जाता है। कोई मनुष्य जो धनी से निर्धन बना है, प्रमाद के कारण तप के ऊँचे शिखर से नीचे गिरा है, ज्ञान खो बैठा है, वह अपनी पुरातन अवस्था को स्मरण करके रोता हुआ कहता है–**'प्र मा..... आसीत्।'** आह! कैसी दयनीय दशा है! संसार में कल जिनका घोष था, जिनका शासन चलता था, सभी विद्वान् जिनका मान करते थे, आज वह नगण्य अवस्था में हो गया है, परन्तु यह रुदन किसी संसारी जन का नहीं है, यह तो ईश-भक्त का है, जो कहता है–**'वहामि स्म पूषणमन्तरेण'**= मैं पालक परमेश्वर को हृदय में धारण करता था। मेरा पालक मेरे हृदय में था, अब उस सम्पत्ति को गँवा बैठा हूँ। जब प्रभु की भक्ति करता था, सब मान करते थे। अभिमान में आकर अब अपना मान गँवा बैठा हूँ।

मेरी यह सारी महिमा और कीर्त्ति भगवद्भक्ति के कारण थी, उसको भुलाने से सब-कुछ नष्ट हो गया है। जो भगवान् को अपनाता नहीं वह कुछ भी पाता नहीं–**'न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः। नकिः शवांसि ते नशत्'** [ऋ० ८।६८।८]= बलियों के जीवनाधार! जो मनुष्य तेरा सख्य नहीं प्राप्त करता, वह कभी तेरे बलों को नहीं पाता।

भगवान् दु:शासु= अदाभ्य है। उसके सङ्ग से मैं भी अदाभ्य बन गया था। उसका सङ्ग छोड़, संसार का सङ्ग किया। संसार का रङ्ग चढ़ते ही मेरे भीतर से वह सारा बल निकल गया। अब मेरी पुनः इच्छा है कि–''मुझे भी लोगों की प्रेरणा करने वाली युक्तियाँ प्राप्त हों, मैं पुनः प्रभु को अपने हृदय में धारण करूँ। सभी विद्वान् मेरी रक्षा करें और संसार में एक शोर उठ खड़ा हो कि दु:शासु=अदाभ्य, वश में न होने वाला आ गया है।'' सचमुच भगवान् को धारण करने से यह फल होता है–**'सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि'** [ऋ० १०।३२।९]–जिसे मैं अपने हृदय में धारण करता हूँ, वह भगवान् मेरे लिए सोम= ऐश्वर्यदायक हो।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

वर्ष 2020 के नए कैलेण्डर मंगवाए

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), चौक किशनपुरा जालन्धर द्वारा प्रति वर्ष हजारों की संख्या में नव वर्ष के कैलेण्डर महर्षि दयानन्द के चित्र के साथ देसी तिथियों सहित छपवाए जाते हैं। गत कई वर्षों से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर आर्य जनता को उपलब्ध करवा रही है। इसी प्रकार सन् 2020 के महर्षि दयानन्द सरस्वती के चित्र वाले कैलेण्डर भी आधे मूल्य पर आर्य जनता को दिए जाएंगे। पिछले वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी कैलेण्डर का मूल्य छह रुपये प्रति तथा 600 रुपए सैकड़ा रखा गया है। इसलिये सभी आर्य समाजें, शिक्षण संस्थाएं व आर्य बन्धु शीघ्र अति शीघ्र कैलेण्डर सभा कार्यालय से मंगवा कर अपने सदस्यों व इष्ट मित्रों में वितरित करें। कार्यालय का समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक है। रविवार को अवकाश रहता है इसलिये समय पर अपना व्यक्ति भेज कर कैलेण्डर मंगवाएं।

प्रेम भारद्वाज सभा महामंत्री

अध्यात्म का महत्व

ले.-प्रोफेसर जया तनेजा एटलांटा (अमेरिका)

इस विषय पर जाने से पहले अध्यात्म शब्द को समझ लेना आवश्यक है। आत्मनि अधि इति अध्यात्मम्। आत्मा विषयक चिन्तन अध्यात्म कहलाता है। आत्मा से अभिप्राय यहाँ जीवात्मा परमात्मा दोनों से है। वैदिक धर्म के अनुसार प्रत्येक मनुष्य-जीवात्मा का यह लक्ष्य है कि वह परब्रह्म को जाने और उसके माध्यम से परम आनन्द प्राप्त करे। इसी परम उद्देश्य के साथ वह संसार में पदार्पण करता है। वेदों में स्वयं निर्दिष्ट किया है-इह चेदवेदीद् तत्सत्यमस्ति न चेदवेदीन् महती विनष्टि:। यदि उस परमात्म तत्व को यहाँ इस जन्म में जान लिया तो सत्य है-ठीक है अन्यथा महा विनाश है। चौरासी के चक्र में घूमते रहना पड़ेगा, जन्म जन्मान्तर तक जीवात्मा चक्कर काटती रहेगी। जो मनुष्य उस सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्द परमेश्वर को नहीं जानता है, वह दु:खों में डूबा रहता है और जो जान लेता है वह सुखी जीवन व्यतीत करता है।

परन्तु उस परम तत्व तक पहुँचने के लिये परा-अपरा-विद्या, अविद्या अर्थात् भौतिक विद्या तथा विद्या (अध्यात्म विद्या) को जानना आवश्यक है। दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। जो यजुर्वेद में प्रत्यक्ष लक्षित होती है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। यजु:

यथार्थ को जाने बिना परमार्थ तक पहुँचना असम्भव है। या यों कहिये कि भौतिक संसार-प्रकृति को जाने बिना सर्वव्यापक सत्ता तक पहुँचना कठिन ही नहीं असम्भव है। जो अपने आप को नहीं जानता, वह परमात्मा तक कैसे पहुँचेगा। जब घर ही नहीं तो मेहमान को कहाँ बिठायेंगे। जान है तो जहान है। ऊपर पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ेगा। अत: वेद ने कहा-जो विद्या और अविद्या दोनों को एक साथ जानता है वह अविद्या से अर्थात् सांसारिक विद्या से-प्रेय मार्ग से मृत्यु को पार करके विद्या से-श्रेय मार्ग से अमृतत्व को-परम ब्रह्म को, कैवल्य को मोक्ष को प्राप्त करता है। तनिक विचारें, जिसने अपने आप को नहीं बनाया, अपने परिवार का, अपने घर का, अपने समाज का, अपने निकटवर्ती संसार का ध्यान नहीं किया, उसका निर्माण नहीं किया जो कि स्वर्ग है, शान्ति से पूर्ण है, वह भला कैसे परमात्मा से संगति कर सकता है जो शान्ति का उद्‌गम स्रोत है।

मुक्ति पाने के लिये जीव को मनुष्य योनि में आना पड़ता है और यह योनि तीन प्रकार के दु:खों से आक्रान्त है-आधिदैविक, आधि-भौतिक, आध्यात्मिक। दैवी कष्ट आधिदैविक होते हैं जैसे अकाल का पड़ना, अतिवृष्टि अनावृष्टि तूफान आदि, अन्य प्राणियों से दु:खों का प्राप्त होना, जैसे अपराध किसी का हो और जेल किसी को भेजा जाये या किसी दूसरे से टक्कर लग जाये, ऐसे दु:ख आधिभौतिक हैं, अपने कारण से दु:खों का आना आध्यात्मिक है। इन तीनों से मुक्ति पाना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। यह मुक्ति अध्यात्म मार्ग पर चलने से ही प्राप्त की जा सकती है।

यज्ञ एक अनन्य मार्ग है विद्या और अविद्या को एक साथ प्राप्त करने का। एक तरफ तो वह घर की और आस-पास के वातावरण की शुद्धि करता है और दूसरी तरफ मन्त्रों के उच्चारण, उनको समझने तथा आचरण में लाने से आत्मा को पवित्र करता है, इसी कारण ही ऐसा कहा जाता है कि यज्ञ ही वह कार्य है जिससे मनुष्य ऐश्वर्य एवं समृद्धि को प्राप्त कर सकता है और साथ ही साथ मुक्ति को भी प्राप्त कर सकता है। यज्ञ आत्मा की जागृति का साधन है। वेद के शब्दों में-यो जागार तमृच: कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। वह जो अपनी आत्मा को जागृत रखता है, वह जो अपनी आत्मा को पापों और दुष्कृत्यों से दूर रखता है वही मनुष्य ही शान्ति और परमात्मा की दया का अधिकारी हो सकता है। पूरे विश्व का आधार यज्ञ ही है। यज्ञो वै विश्वस्य भुवनस्य नाभि:।

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:-मन ही मनुष्यों के बार-बार जन्म लेने का और मुक्ति प्राप्त करने का कारण है। चंचलं हि मन: कृष्ण-यह मन बहुत चंचल और हठी है, परन्तु बलवान् और दृढ़ भी है, जैसे हवा को गठड़ी में बांधा नहीं जा सकता, ऐसे ही मन को वश में करना अत्यन्त दुष्कर है।

यह मन बड़ा चंचल है चिन्तन में नहीं लगता।

जितना इसे समझाऊँ उतना ही मचल जाये।।

अध्यात्म मार्ग ही इसको वश में करने का उपाय बताता है, योग सिखाता है, सारे दर्शन इसी की चर्चा करते हैं, वेद शास्त्र आत्मा परमात्मा प्रकृति का ही बखान करते हैं, योग दर्शन का सूत्र है-योगश्चित्त-वृत्तिनिरोध:-ऐन्द्रिय सुखों में लिप्त हुई, अनावश्यक भोगों में आसक्त, इधर-उधर डोलती हुई चित्त की वृत्तियों को रोकना, वश में करना ही निरोध है। जन्म जन्मान्तर से अच्छे और बुरे संस्कार-वृत्तियां-छाप मन पर पड़े होते हैं उनको बुरे संस्कारों से रहित करना और सुमार्ग पर ले जाना, आत्मा तथा परमात्मा का मेल करा देना, एकीकरण करा देना अध्यात्म का काम है। वेद, दर्शन, उपनिषदें, आर्ष ग्रन्थ सब अध्यात्म को ही बताते हैं। उनका लक्ष्य जन्म जन्मान्तर से भिन्न-भिन्न योनियों में कुकर्मों को भोगने वाले जीवात्मा को दुष्कर्मों से हटा कर सुकर्मों में प्रेरित कर परमात्मा के आनन्द को प्राप्त कराना है। योग सूत्र बताता है-तप: स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधानानि क्रियायोग:। इन्द्रियों का दमन, ब्रह्मचर्य का पालन, अच्छे साहित्य का, धार्मिक पुस्तकों का, वेद शास्त्रों का अध्ययन, ईश्वर स्तुति पूर्वक ओम् का जाप करना, यह क्रिया योग ही परमात्मा तक पहुँचाने वाला है, उसके आनन्द को अनुभव कराने वाला है।

आनंदो वै ब्रह्म-वह ब्रह्म आनंदस्वरूप है, रसों वै स:-वह नीरस नहीं है सरस है।

भिद्यते हृदयग्रन्थि:, छिद्यन्ते सर्व संशया:।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टि परावरे।

उसकी संगति में हृदय की गाँठ खुल जाती है, सारे संशय मिट जाते हैं। उसको ही प्राप्त करके जीवात्मा आनन्दित हो जाता है।

यजुर्वेद में कहा है-न ऋते त्वदमृता मादयन्ते-ईश्वर का अनुभव किये बिना जीवात्मायें कभी आनंदित नहीं हो सकती। अध्यात्म प्रिय व्यक्ति का जीवन एकदम परिवर्तित हो जाता है, सदा प्रसन्न वदन, सौम्य सदा सन्तुष्ट, निराशा से कोसों दूर सकाम कर्मी से हटकर निष्काम कर्म करने वाला परोपकार प्रिय हो जाता है। उसकी दृष्टि में यज्ञीय भावना से किया हुआ कर्म उसे जीवन मुक्त बना देता है, वह निरीक्षण करता है परमात्मा की सृष्टि का, जिसे परमात्मा ने जीवों के कल्याण के लिये बनाया है, अपने स्वार्थ के लिये नहीं। सूर्य दूसरों के कल्याण के लिये प्रकाश और उष्णता दे रहा है। हवा दूसरों के लिए बह रही है, पानी भी दूसरों के लिए अपने आप को मिटा रहा है, या यों कहिये कि मिट्‌टी का एक-एक कण तक भी निस्वार्थ संलग्न है। यज्ञ में घी सामग्री डालने वाला-इदं न मम-उच्चारण करते हुये-

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर।

तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर।।

इन भावनाओं के साथ आहुति देकर के वातावरण को सुगन्धित करता हुआ वह श्रेयमार्गी दूसरों को खिला कर, अपने आप को प्रभु का प्रिय बनाता हुआ इसी में सुख का अनुभव करता है। वह समझ चुका है कि स्वार्थी मनुष्य पापी होते हैं, वे अघायु हैं, इन्द्रियाराम हैं, इन्द्रियों को आराम देते हैं, उनमें रमण करते हैं। उनके ही सुखों में लिप्त हैं जब कि यह परमात्मा का अनुकरण करके अपने जीवन को सार्थक कर अपने लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है और अपनी हर क्रिया पर दत्तावधान होकर संसार में विचरण करता है, सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समान होकर चलता है। बस केवल कर्म में ही अपना अधिकार समझता है, वह इन्द्रियों को बुराईयों से हटाकर शुभ कर्मों में परिवर्तित कर, इन्हें विषय भोगों में न लगाकर सुकर्मों में प्रेरित कर अपनी बुद्धि को परमात्मा प्राप्ति के मार्ग पर लगाता है। आत्मा जब परमात्मा की ओर लग जायेगा तब मनुष्य की कामनायें समाप्त हो जायेंगी। वह अपनी आत्मा को नियन्त्रित कर सकेगा। चित्त की

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

धर्म के दस लक्षणों को जानें

महर्षि मनु जी महाराज ने मनुस्मृति में धर्म के दश लक्षण गिनाएं हैं जिन लक्षणों में एक भी लक्षण आजकल के बाबाओं के जीवन में नहीं दिखाई देता-धृति: क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। पहला लक्षण (धृति) धैर्य रखना, दूसरा- (क्षमा) जो कि निन्दा स्तुति, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि दु:खों में भी सहनशील रहना, तीसरा-(दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे, चौथा- (अस्तेय) चोरी त्याग अर्थात् बिना आज्ञा या छल कपट, किसी व्यवहार तथा वेदविरूद्ध उपदेश से पर पदार्थ का ग्रहण करना चोरी, पांचवा- (शौच) राग-द्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर और बाहर की पवित्रता रखना, छठा- (इन्द्रिय निग्रह) अधर्माचरणों को रोक के इन्द्रियों को धर्म में ही सदा चलाना, सातवां- (धी:) मादक द्रव्य बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य प्रमाद आदि को छोड़ कर श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरूषों का संग, योगाभ्यास से बुद्धि बढ़ाना, आठवां- (विद्या) पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, सत्य जैसा आत्मा में, वैसा मन में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना, इसके विपरीत अविद्या है। नवां- (सत्य)जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना, वैसा ही करना भी तथा दशवां- (अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़के शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करना। ये दश धर्म के लक्षण हैं।

वर्तमान के धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्ड़ों को देखकर मनुष्य के लिए विचारणीय प्रश्न उत्पन्न हो गया है कि धर्म का सही स्वरूप क्या है? जब कोई ढ़ोगी बाबा या तथाकथित संत कोई अनैतिक कार्य करता है, अनाचार में लिप्त होकर समाज में उसका असली स्वरूप सामने आता है तो धर्म के नाम का मुद्दा शुरू हो जाता है। मीडिया वर्ग इस बात को प्रमुखता से दिखाता है धर्म के नाम पर बहस शुरू कर देता है और यह कहा जाता है कि धर्म की आड़ में बाबा के द्वारा किया गया घिनौना कृत्य, धर्म के नाम पर बाबा की दुकानदारी, धर्म की आड़ में लोगों को किया गुमराह। बाबा के द्वारा किए गए हर कृत्य को धर्म के साथ जोड़कर उसे धर्म का चोला पहना दिया जाता है। बाबा के द्वारा स्थापित किसी मत, पन्थ, सम्प्रदाय को धर्म का नाम दे दिया जाता है। मीडिया के किसी भी बुद्धिजीवी वर्ग ने यह जानने का प्रयास नहीं किया कि वास्तव में धर्म क्या है? इस बात का निष्कर्ष नहीं निकाला कि बाबा का यह कुकृत्य धर्म का विषय है भी या नहीं? इसी विषय को लेकर कुछ धर्म के ठेकेदारों को चैनल पर बिठाकर धर्म के नाम पर बहस शुरू हो जाती है। परन्तु आज तक कोई भी धर्म की सही परिभाषा नहीं बता पाया। इसका कारण यह है कि धर्म के विषय में उनका ज्ञान शून्य है। वे केवल हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों को ही धर्म समझते हैं। कभी भी यह जानने का प्रयास नहीं किया कि वेद और शास्त्र धर्म के विषय में क्या कहते है? धर्म के विषय पर बहस शुरू कर देते है।

महर्षि मनु ने स्पष्ट कर दिया है कि धर्म के लक्षण कोई बाहरी चिह्न नहीं हैं जिन्हें देखकर व्यक्ति के धार्मिक होने या धर्म का पता चल सके। ये सभी दश लक्षण व्यक्ति के व्यवहार आचार-विचार एवं आन्तरिक प्रवृत्ति से हैं। इन लक्षणों के आधार पर ही व्यक्ति के धार्मिक और अधार्मिक होने का अनुमान लगाया जा सकता है। जो व्यक्ति सत्य नहीं बोलता, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, इन्द्रियों के ऊपर संयम नहीं है, ऐसा व्यक्ति कितना भी बाह्य आडम्बर धारण कर ले, उसे धार्मिक होने की पदवी नहीं दी जा सकती।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कार विधि में जहां मनुस्मृति में वर्णित धर्म के दश लक्षणों को उद्धृत किया है। वहां महर्षि दयानन्द ने अहिंसा को भी धर्म का लक्षण मानकर धर्म के ग्यारह लक्षण माने हैं। महर्षि मनु जी कहते हैं कि जो विप्र या द्विज धर्म के इन दश लक्षणों का अध्ययन मनन करते हैं वे उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। प्राणी जगत् में यदि कोई सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो वह है-मनुष्य। मानव जीवन सर्व शक्तियों का केन्द्र तथा सर्व सुखों का स्रोत है। यह आत्मा मानव जीवन को प्राप्त करके ही उन्नति की चरम सीमा तथा अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आत्मा के अन्दर जो महान दिव्य शक्तियां निहित हैं उनका विकास इसी मानव जीवन में होना सम्भव है। यह मानव जीवन ही अपने चरम उत्कर्ष द्वारा स्वयं भी अपने जीवन को सुखमय बना सकता है और विश्व को भी सुख शांति का सन्देश सुना सकता है तथा देश, जाति और राष्ट्र का उत्थान कर सकता है। परन्तु मनुष्य राष्ट्र का उत्थान और उसे सुखी तभी बना सकता है जबकि वह पहले स्वयं अपना उत्थान कर ले।

मानव जीवन में उत्थान और उसे सुखमय बनाने का यदि कोई सर्वोत्तम साधन है तो वह है धर्म। धर्म वह शीतल जल है जो इस मानव जीवन रूपी वृक्ष को हरा-भरा रखता है तथा उसे पुष्पित तथा फलित बना देता है जिस के मधुर तथा स्वादिष्ट फलों का आश्वादन कर वह स्वयं भी सुख पाता है और अपने मधुर तथा स्वादिष्ट फलों द्वारा राष्ट्र को भी सुखमय बना देता है। इसके विपरीत धर्महीन मानव जीवन नीरस और फीका है। धर्म मनुष्य को विलासितामय जीवन से हटाकर उसे संयमी और सदाचारी बना देता है। वर्तमान में धर्म से विमुख होने के मुख्य रूप से दो कारण हैं एक सदाचार का न होना और दूसरा धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझना। आज जहां सदाचार से रहित जीवन मनुष्य को धर्मपरायण नहीं होने देता वहां धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण मनुष्य धर्म से दूर होता जा रहा है। आज लोगों ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझ कर वर्त्तमान में प्रचलित समुदायों, और मजहबों को ही धर्म समझ लिया है। जब मनुष्य इस समुदायों द्वारा प्रचलित नाना प्रकार के आड़म्बरों और देश तथा समाज की उन्नति में बाधक फिर रूढ़ी रिवाजों तथा कुप्रथाओं को देखता है तो धर्म से उदास हो जाता है। इन्हीं सम्प्रदायों, मजहबों तथा समुदायों को आज के राजनेताओं ने धर्म समझ कर अपने आपको धर्म निरपेक्ष घोषित कर दिया है।

महाभारत में कहा है-**धर्मो धारयते प्रजा** अर्थात् प्रजाओं का धारण धर्म ही करता है। धर्म ही उसे सत्पथगामी बनाता है। ऋषि दयानन्द अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कार विधि में इसी धर्म के यथार्थ स्वरूप का निम्न मार्मिक शब्दों में वर्णन करते हैं- किसी से वैर वृद्धि करके अनिष्ट करने में कभी न वर्तना सुख, दुख हानि लाभ में व्याकुल होकर कभी कर्त्तव्य को न छोड़ना। धैर्य पूर्वक अपने कर्त्तव्य में स्थिर रहना, निन्दा, स्तुति, मान, अपमान का सहन करना। मन को सदा अधर्माचरण से हटा कर धर्माचरण में ही प्रवृत्त रखना। मन, कर्म, वचन से अन्याय और अधर्म के द्वारा किसी वस्तु का स्वीकार न करना। राग, द्वेष आदि के परित्याग से आत्मा और मन को पवित्र और जलादि से शरीर को शुद्ध रखना। श्रोत्र आदि इन्द्रियों को अकर्त्तव्यता से हटा कर्त्तव्य कर्मों में सदा प्रवृत्त रखना। वेदादि सत्य विद्या ब्रह्मचर्य, सत्संग करने और कुसंग दुर्व्यसन, मद्यपानादि के परित्याग से बुद्धि को सदा निर्मल बनाना। सत्य जानना, सत्य बोलना, सत्य कहना क्रोध आदि दोषों का परित्याग कर शान्ति आदि गुणों को धारण करना ही धर्म कहलाता है।

वर्तमान में धर्म के नाम पर जो कुछ हो रहा है, धर्म के नाम पर जो आडम्बर फैलाया जा रहा है, इसके ऊपर विचार करने की आवश्यकता है। आज ऐसे ढ़ोगी बाबाओं से समाज को सावधान करने की आवश्यकता है जिनका धर्म के विषय में ज्ञान शून्य है। जिनके जीवन में धर्म नाम की कोई चीज नहीं है, वे धर्म के ठेकेदार बने हुए हैं और धर्म के नाम पर समाज का अहित कर रहे हैं। आज मत, पन्थ और सम्प्रदाय को धर्म का स्वरूप दे दिया गया है। इसी तथाकथित धर्म के नाम पर लोगों को आपस में लड़ाया जाता है, एक दूसरे से अलग किया जाता है। ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित धर्म के सिद्धान्तों का पालन करने से संसार की उन्नति हो सकती है। इसलिए महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज के नियम में लिखा कि सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए। सत्य आचरण करना और उसी के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही धर्म है। सत्य को छोड़कर मनुष्य धार्मिक होने का दिखावा तो कर सकता है परन्तु धार्मिक नहीं बन सकता।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

विद्या की प्राप्ति आवश्यक

ले.-शिवनारायण उपाध्याय 73, शास्त्री नगर, दादाबाड़ी, कोटा

शास्त्रों का कथन है कि जीवन में विद्या की प्राप्ति का बड़ा महत्व है। बिना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं है। इसीलिए वेदों में विद्या के विषय में पर्याप्त वर्णन है। यहां मैं उसे संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

विद्या चूंकि जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसलिए विद्या प्राप्त करना सभी मनुष्य जाति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

विद्या की प्राप्ति में सब एक दूसरे का सहयोग करें किसी को भी शिक्षा प्राप्ति के अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिये।

यथेमां वाचं कल्याणी-मावदानी जनैभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।।
यजु. 26.2

हे मनुष्यों। मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्म राजन्याभ्यां) ब्राह्मण, क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) स्त्री, सेवक आदि (च) और (अरणाय) उत्तम लक्षण युक्त अन्त्यज के लिए (च) और (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इह) इस संसार में (इमाम) इस व्यक्ति को (कल्याणीम्) कल्याण करने वाली (वाचम्) वेद वाणी का (आवदानी) उपदेश करता हूँ वैसे आप लोग भी इसका अच्छे प्रकार उपदेश करें। विद्या की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है और उसने सबका कल्याण किया है।

आ गावो अग्मन्नुत्त भद्रमक्र-न्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरूरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरूषसो दुहानाः।।
अथर्व. 11.21.1

अर्थ-(गावः) स्तुति योग्य विद्याएं (आ अग्मन्) प्राप्त हुई हैं (उत) और उन्होंने (भद्रम्) कल्याण (अक्रन) किया है। वे (गोष्ठे) हमारे विद्वत् समाज में (सीदन्तु) प्राप्त होवें और (अस्मे) हमें (रणयन्तु) सुख देवें। वे (इह) यहां समाज में (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले पुरूष के लिए (पूर्वीः) बहुत (उषसः) प्रभात वेलाओं तक (प्रजावतीः) उत्तम मनुष्यों वाली (पुरूरूपाः) अनेक लक्ष वाली होकर (दुहानाः) कामनाओं को पूर्ण करती हुई (स्यु) रहें।

शासकों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे राज्य में विद्वान् आचार्यों के द्वारा विद्या के प्रचार-प्रसार में पर्याप्त अर्थ की व्यवस्था करें।

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति।
भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये निदधाति देवयुम्।। अथर्व. 4.21.2

अर्थ-(इन्द्र) ऐश्वर्यवान राजा (यज्वने) यज्ञ करने वाले (च) और (गृणते) उपदेशक पुरूष को (शिक्षिते) शिक्षा देता है और (उप=उपेत्य) आदर करके (स्वम्) धन (ददाति) देता है और (न) न (मुषायति) चुराता है और (देवयुम्) दिव्य गुण अथवा विद्वानों के प्राप्त कराने वाले (रयिम्) धन को (भूयोभूयः) अधिक-अधिक (इत) ही (वर्धयन) बढ़ाता हुआ (इत् अस्य) इस संसार के (अभिन्ने) अटूट (खिल्ये) कण-कण प्राप्ति के लाभ में (निदधाति) निधि रूप में रखता है।

भावार्थ-प्रतापी राजा स्वार्थ छोड़कर विद्या दानादि में धन को व्यय करता है, विद्या बल से धन को बढ़ाता हुआ संसार को लाभ पहुंचाता है।

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह।। अथर्व. 4.21.3

(ता) वे विद्यायें (न) नहीं (नशन्ति) नष्ट होती हैं, (न) न उन्हें (तस्करः) तस्कर (दभाति) ठगता है, (न) न (आमित्रः) पीड़ा देने वाला (व्यथिः) व्यथाकारी शत्रु (आसाम्) इनकी (आ दधर्षति) हंसी उड़ाता है। (च) और (गोपतिः) विद्याओं का स्वामी, वाचस्पति (याभिः) जिन विद्याओं से (देवान्) दिव्य गुणों को (यजते) पूजता (च) और (ददाति) देता है, (ताभिः सह) उन विद्याओं के साथ (ज्योक् इत्) बहुत ही काल तक वह (सचते) मिला रहता है।

भावार्थ-विद्या, अक्षय कोश है। जो मनुष्य विद्याओं को सत्कारपूर्वक ग्रहण करके संसार में फैलाता है, वह यशस्वी होकर सदा आनन्द भोगता है।

न ता अर्वा रेणुक काटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरूगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः।।
अथर्व. 4.21.4.

(न) न तो (अर्वा) विषया सक्त अथवा हिंसक पुरूष और (न) न (रेणुक काटः) धूलि के कुएं के समान गिर जाने वाला मनुष्य (ताः) उन विद्याओं को (अश्नुते) पाता है। (ताः) वे विद्यायें (संस्कृतत्रम्) संस्कृत विद्याओं के रक्षक जन को (अभि) सब ओर से (उप यन्ति) आती हैं। (ताः गावः) वे विद्यायें (तस्य) उस (यज्वनः) देवताओं के पूजने वाले (मर्तस्य) मनुष्य के (उरूगायम्) बड़े प्रशंसनीय (अभयम्) निर्भय राज्य में (अनु) अनुकूलता से (विचरन्ति) विचरती हैं।

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिन्दिन्द्रम्।।
अथर्व. 4.21.5

(गावः) विद्यायें ही (भगः) धन हैं, (गावः) विद्यायें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य हैं, (गावः) विद्यायें (प्रथमस्य) अति श्रेष्ठ (सोमस्य) सोम रस अर्थात् मोक्ष का (भक्षः) सेवन हैं, (इति) (मे इच्छात्) यह मेरी इच्छा हो। (जनासः) हे मनुष्यों। (इमाः) ये (याः) जो (गावः) विद्यायें हैं (सः) सो ही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य है। (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य की (चित्) ही (हृदा) परम ऐश्वर्य है। (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य की (चित्) ही (हृदा) हृदय अर्थात् आत्मा और (मनसा) विज्ञान के साथ (इच्छामि) मैं चाह करता हूँ।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिद श्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्र वाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु।।
अथर्व. 4.21.6

(गावः) हे विद्याओं। (यूयम्) तुम (कृशम्) दुर्बल से (चित्) भी (अश्रीरम्) श्री रहित निर्धन से (चित्) भी (मेदयथ) स्नेह करती हो और (सुप्रतीकम्) बड़ी प्रतीती वाला (कृणुथ) बना देती हो। (भद्र वाचः) हे कल्याणी विद्याओं। (गृहम्) घर को (भद्रम्) मंगलमय (कृणुथ) कर देती हो (सभासु) विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में (वः) तुम्हारा ही (वयः) बल (बृहत्) बड़ा (उच्यते) बताया जाता है।

प्रजावतीः सूयवसे रूषन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वस्तेन ईशत माघ शंसः परि वो रूद्रस्य हेतिर्वृणक्तु।।
अथर्व. 4.21.7

हे मनुष्यों। (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली (सुयवसे) सुन्दर यवादि अन्न वाले घर में (अन्न) (रूशन्तीः) खाती हुई और (सुप्रमाणे) सुन्दर जल स्थान में (शुद्धा) शुद्ध (अपः) जलों को (पिबन्तीः) पीती हुई (वः) तुमको (स्तेनः) चोर (मा ईशत) वश में न करे और (मा) न (अघशंस) बुरा चीतने वाला, डाकू उचक्का आदि वश में करे। (रूद्रस्य) पीड़ा नाशक परमेश्वर की (हेतिः) हनन शक्ति (वः) तुमको (परि) सब ओर से (वृणक्तु) त्यागे रहे।

भावार्थ-मनुष्य विद्यायें उपार्जित करके अपनी सन्तानों को उत्तम शिक्षा देते हुए और अन्न जल आदि का सुप्रबन्ध करते हुए सदा हृष्ट पुष्ट और बुद्धिमान रहें जिससे चोर आदि उसे सता न सकें।

सोमा नँ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
कक्षी वन्तं यऽऔशिजः।।
यजुर्वेद 3.28

हे (ब्रह्मणस्पते) सनातन वेद शास्त्र के पालन करने वाले परमेश्वर! आप (यः) जो मैं (औशिजः) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य हूँ उस मुझको (कक्षीवन्तम्) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त (स्वरणम्) सब विद्याओं का कहने और (सोमानम्) ओषधियों के रसों को निकालने वाला तथा विद्या की सिद्धि करने वाला (कृणुहि) कीजिये।

(क्रमशः)

"वैदिक अर्थ-मन्त्रणा"

ले.-देवनारायण भारद्वाज वरेण्यम्, अवन्तिका कॉलोनी, रामघाट रोड़, अलीगढ़ (उत्तर-प्रदेश)

(गतांक से आगे)

तस्मिन् म इन्द्रो रूचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः।। (अथर्व. 3.15.6)

अर्थात् मैं धन लगाकर पवित्र व्यापार के द्वारा धन को और बढ़ाना चाहता हूँ, इसमें मैं परमेश्वर के साथ-साथ समाज के सुयोग्य देव-पुरुषों का मार्गदर्शन भी चाहता हूँ-जिन्हें हम इन्द्र, प्रजापति, सविता, सोम, अग्नि के नाम से जानते हैं, जो हमें क्रमश: विद्युत् सा चमकदार ऐश्वर्य, राजा की भाँति सुरक्षा, सूर्य की भाँति अग्रता व गतिशीलता प्रदान करते हैं। जब हम पुरुषार्थ व प्रार्थनापूर्वक धन का अर्जन करेंगे, तो वह धन काला नहीं उजला बनकर आएगा। पीढ़ियाँ बढ़ते हुए इसे बढ़ाती रहेंगी। महोपदेशक सांसद आर्यनेता पण्डित शिवकुमार शास्त्री ने अपने ग्रन्थ 'श्रुति सौरभ' में वेद के आर्थिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए एक मन्त्र उद्धृत किया है-

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर।। (ऋ. 1.8.1)

हे ऐश्वर्यों के भण्डार प्रभो! हमें अपनी रक्षा-गति-प्रगति आदि के लिए बाँटकर उपभोग में आने वाले, विजेता बनाने वाले, सदा स्वावलम्बी व सहिष्णु बनाने वाले, बहुत वर्षों तक टिकने व बढ़ने वाले ऐश्वर्य को सब ओर से दीजिए। मन्त्रानुसार धन का उपयोग चार प्रकार की प्रतिबद्धताओं को ध्यान में रखकर करने से वह न केवल बढ़ता है, प्रत्युत रक्षित भी रहता है। धन को न्यायपूर्वक बाँटकर उपभोग करें, सतर्क विजेता बने रहें, निरालस सहनशील व स्वावलम्बी बने रहे और धन बढ़ता व बढ़ाता रहे। धन का स्वामी पतन से बचकर उच्च से उच्चतर स्थान प्राप्त करता रहे।

द्रविणं ममन्यात् ऋतस्य पथा नमसा विवासेत्। (ऋ.10.31.2)

ऋजुता एवं सच्चाई के मार्ग पर चलकर धन को परिश्रम व निरभिमानता से कमाएं। इसी मन्त्र में आगे कहा गया है-

श्रेयांसं दक्षं मनसा, जगृभ्यात्।।

अर्थात् उत्तम कल्याणकारी व्यवसाय को ही मनोयोगपूर्वक करे।

महाभारतकालीन राजनीतिक विद्रूपताओं में उलझे हुए नीतिकार महात्मा विदुर के अनुभव को जानिए-

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।

धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते।। (विदुरनीति 2.31)

राजा को चाहिए कि वह धार्मिक उपायों से राज्य को प्राप्त करे और धार्मिक साधनों से ही उसकी पूर्ण रूपेण रक्षा भी करे, क्योंकि धर्ममूलक, राज्यलक्ष्मी को पाकर न वह राजा उस ऐश्वर्य को छोड़ता है और न वह ऐश्वर्य उस राजा को छोड़ता है। विदुर जी के समान नीतिज्ञ-मन्त्री की बात को राजा धृतराष्ट्र नहीं अपना सके, क्योंकि वे प्रज्ञाचक्षु नहीं चक्षुहीन होकर अपने पुत्र दुर्योधन के मोहपाश में जकड़े थे। धर्मराज युधिष्ठिर की नैतिकता का आकलन कीजिए जो कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में भी अपने शस्त्रास्त्रों को एक ओर छोड़कर कौरवों के प्रथम सेनापति के रूप में युद्ध के लिए उद्यत पितामह भीष्म के समीप जाकर नतमस्तक होकर कहते हैं: हम अपने कर्तव्य-पालन की दृष्टि से युद्ध के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं। आप हमारे पूज्य हैं-मैं आपकी अनुमति व आशीर्वाद के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। धर्मराज के इस शिष्ट व विनीत व्यवहार से गद्गद् भीष्म जी पुलकित होकर बोल पड़े-मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, ईश्वर तुम्हें विजयी बनाए। साथ ही उन्होंने अपनी दुर्बलता-विवशता के शब्दों में अर्थ की महत्ता भी प्रकट कर दी।

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।

इति सत्यं महाराज! बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।। (महा. 6.41.36)

हे युधिष्ठिर! मनुष्य अर्थ का दास है। अर्थ किसी का दास नहीं है। इसीलिए तुम्हें ठीक समझते हुए भी मैं दुर्योधन का पक्ष लेकर लड़ रहा हूँ, क्योंकि मेरी सब आवश्यकताएँ पूरी करके कौरवों ने मुझे अर्थ से बाँध लिया है। अत: इस शरीर पर दुर्योधन का अधिकार है, किन्तु आत्मपक्ष तो न्याय की ओर है, इसीलिए मैं तुम्हारी विजय की कामना करता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे सत्य व न्याय के आशीर्वाद पाण्डवों को फले और वे विजयी हुये। पितामह भीष्म की मात्र एक अर्थ की ही विवशता नहीं थी, किन्तु उनके शब्दों में आज के सामान्यजन की बाध्यता बोल रही थी यथा-'**बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्**' भूखा कौन सा पाप करने पर उतारु नहीं हो जाता? आधुनिक काल में तो इस भूख के एक नहीं सहस्त्रों मुख बन गए हैं, जो रोटी-कपड़ा-मकान ही नहीं, अब कार, कुत्ता, कोठी की मांग को भी पीछे छोड़कर पद-मान-प्रतिष्ठा की लक्ष्मण रेखाओं को भी लांघकर वोट-नोट-चोट की सत्ता तक पहुँच गई है। उर्दू शायर ने सही संकेत किया है-तंगदस्ती भी बुरी माल की कसरत भी बुरी। बस इन्हीं बातों से ईमान बदल जाता है। हाथ की तंगी-दरिद्रता, धन-वैभव की अधिकता दोनों ही बुराई की जड़ हैं, जिनसे मनुष्य के चरित्र का पतन हो जाता है। हिन्दी कवि बिहारी जी ने भी यही कहा है-

कनक-कनक से सौ गुनी मादकता अधिकाय।

या खाए बौराय जग वा पाये बौराय।।

धतूरा व स्वर्ण दोनों को ही कनक कहते हैं। धतूरा तो खाने पर ही मनुष्य को मदहोश करता है, जबकि स्वर्ण को पाते ही मनुष्य मदहोश हो जाता है। गेहूँ का नाम भी कनक है। जो मनुष्य भूख होने पर दर-दर भटकते हैं, किन्तु पेट भर जाने पर वही इतराने लगते हैं-अर्थात् उन्हें रोटी लग गई है की लोकोक्ति से पहचाना जाता है। भुक्त भोगी विरक्त सम्राट् भर्तृहरि की अनुभूति सुनिए-

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः।

ए एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्तो।। (नीतिशतक 41)

धन प्राप्त हो गया, तो मानो वह व्यक्ति कुलीन, पण्डित, गुणज्ञ, विद्वान, वक्ता और दर्शनीय हो गया, अर्थात् सभी गुण स्वर्ण में निवास करते हैं। राजर्षि भर्तृहरि की भले ही तत्कालीन जगत् के प्रति यह व्यङ्ग्योक्ति हो, किन्तु आज यह वास्तविकता है। पति-पत्नी व दो बच्चों के छोटे परिवार में जहाँ स्त्री-पुरुष दोनों अच्छे कमाऊ होते हैं, वहाँ उनकी भोगलिप्सा असीमित हो जाती है। अनेक शयनकक्षों का विशाल आवास, प्रत्येक सदस्य का पृथक् वाहन, प्रचुर ए.सी., टी.वी., वी.सी.आर., सी.डी.पी., फ्रिज, इन्वर्टर और जनरेटर न जाने क्या नहीं चाहिए उन्हें। कोई विद्यार्थी या बीमार कितना ही पीड़ित हो, उनका जनरेटर तो उनकी सम्पन्नता का डंका पीटता ही रहेगा। इसीलिए वेद ने कहा है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। (यजु. 40.16)

सत्य के पात्र का मुख चमकदार सोने द्वारा ढका होने से मनुष्य सोने से आगे बढ़ ही नहीं पाता है।

हिरण्यपाणि (ऋ. 1.22.5)

बनकर मनुष्य स्वयं ही स्वर्ण के आवरण को हटाकर सत्य आनन्द के शाश्वत लक्ष्य को प्राप्त कर। आज सर्वत्र स्वर्ण के समान ज्योति व चमक दिखाई देती है। जहाँ देखो वहाँ इन्द्र ही इन्द्र अर्थात् विद्युत् ही विद्युत का चमत्कार है। कौन सा यन्त्र-उपकरण है जो इस विद्युत् से संचालित नहीं किया जाता है। जो काम कभी हाथ अथवा हाथ की अँगुलियाँ करती थीं, मानव-मस्तिष्क करता था, वही काम अब सुपर कम्प्यूटर संकेत मात्र से कर देता है। भारत जैसे विकासशील देश विद्युत् के अभाव से ग्रसित रहते हैं; कितना ही जनरेटर चलाओ यन्त्र-संयन्त्र ठप्प हो ही जाते हैं, तभी मनुष्य इन यन्त्रों की यन्त्रणा-यातना में फँस जाते हैं।

आज राष्ट्र के विकास का अर्थ है ऊपरी चमक-दमक को बढ़ाना। विज्ञान बहुत उपयोगी व आवश्यक है, किन्तु उसी सीमा तक जहाँ हमारा मौलिक ज्ञान भी रक्षित रहे। कहीं ऐसा न हो कि शरीर तो मोटा होता रहे, किन्तु आत्मा दुर्बल होती जाए। असौम्यता-कामुकता-हिंसा से भरे चलचित्र, विज्ञापन तथा महिलाओं के नग्न-फैशन प्रदर्शन बालकों की मानसिकता को कुप्रभावित करते चले जाते हैं। घर-बाहर सर्वत्र चरित्र का पतन चरम परिणति पर पहुँच चुका है। किसी युग का वह नेवला जिसका आधा शरीर सोने का था, महाभारत-कालीन युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के बृहद् भोज की जूठन में लोटता फिर रहा था। उस यज्ञ में समागत ब्राह्मण श्रेष्ठों ने उससे प्रश्न किया: अरे नेवले इधर-उधर जूठन में जहाँ अतिथियों के भोजनोपरान्त हाथ धोये जा रहे हैं-क्यों लोट लगाता फिर रहा है? उसने अपने पुराने युग की चर्चा करते हुए उत्तर दिया-तब एक निर्धन ब्राह्मण द्वारा अतिथि को खिलाए सत्तू की जूठन में मेरा आधा शरीर स्वर्ण का हो गया था। सोचा था कि शेष आधा शरीर इस महाभोज की जूठन में सोने का हो जाता, किन्तु मैं निराश ही रह गया हूँ। हे नेवले तू आज सोने का नहीं हुआ, नहीं तो तेरे स्वर्णभाग को लेने के लिए लोग

(शेष पृष्ठ 7 पर)

परम आनन्द प्राप्ति की चार अवस्थाएँ

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज़ १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

आत्मा के लिए परम आनन्द की प्राप्ति निम्नलिखित चार अवस्थाएँ हैं। (1) सुषुप्ति अवस्था (2) परोपकारी कार्य (3) समाधि (4) मोक्ष

लेख के आरम्भ करने से पहले यह बतलाना अति आवश्यक है कि सुख और आनन्द से क्या अन्तर होता है। सुख में दो अक्षर है "सु" और "ख"। "सु" का अभिप्राय होता है अच्छा और "ख" का अभिप्राय होता है इन्द्रियाँ यानि जो अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों को अच्छा लगे वह सुख होता है जैसे जिह्वा को अच्छा स्वादिष्ट भोजन अच्छा लगता है, कानों को अच्छा सुरीला भजन अच्छा लगता है, आँखों को अच्छा मनमोहक दृश्य अच्छा लगता है। त्वचा को अच्छा आनन्ददायक स्पर्श अच्छा लगता है, इसी प्रकार नाक को अच्छी सुगन्धित महक (सुगन्ध) अच्छी लगती है। ये सब सुख हैं जो शरीर सम्बन्धी विषय है। परन्तु आनन्द शरीर का विषय न होकर आत्मा का विषय है यानि जिस काम को करने से आत्मा प्रसन्न होती है वह आनन्द होता है। गहरा व लम्बा आनन्द परम् आनन्द कहलाता है। क्षणिक प्रसन्नता या आनन्द, केवल आनन्द कहलाता है। जैसे कभी-कभी सोचते समय प्रसन्नता होती है जो क्षणिक है वह आनन्द कहलाती है। परमानन्द प्राप्ति की ऊपर लिखी हुई चार अवस्थाएँ हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इसी भाँति है:-

1. सुषुप्ति अवस्था-जब कभी मनुष्य को लम्बे समय तक आनन्दमयी, सुखदायक निद्रा आती है तो वह उठकर कहता है कि आज तो सोने में बड़ा आनन्द गया। ऐसी गहरी नींद में जो आनन्द की अनुभूति होती है। वह परम् आनन्द कहलाता है।

2. परोपकारी कार्य-जब मनुष्य कोई अच्छा काम करता है जैसे स्कूल बनवाता है, धर्मशाला बनवाता है, कुँवा खुदवाता है, कोई अनाथालय बनवाता है, किसी भूखे को रोटी देता है या प्यासे को पानी पिलाता है अथवा भूले भटके को रास्ता बतलाता है तब आत्मा में एक विशेष किस्म के आनन्द की अनुभूति होती है और जब इस अच्छे परोपकारी कार्य की कोई प्रशंसा करता है तब भी आत्मा को एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। वह परम आनन्द कहलाता है।

3. समाधि-अष्टांग योग के आठ अंग हैं जिनमें पहले सात अंग यम (सत्य, अहिंसा, अस्तेय यानि चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यानि संचय न करने की प्रवृत्ति) यह पाँच यम अन्दर की शुद्धि के लिए हैं दूसरा नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, व ईश्वर प्रणिधान) यह पाँच नियम बाहर की शुद्धि के लिए है। तीसरा आसन, चौथा प्राणायाम पाँचवाँ प्रत्याहार छठा धारणा सातवाँ ध्यान। इन सात अंगों को पार करके जब मनुष्य आठवें अंग समाधि में पहुँचता है और वह ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्थावान हो जाता है तब उसे जो आनन्द प्राप्त होता है, वह भी परम् आनन्द कहलाता है।

4. मोक्ष-जब मनुष्य अपने स्वार्थ को छोड़ जीवन भर परमार्थ यानि परोपकार के काम करता है यानि अपने जीवन भर स्वाभाविक कार्य खाना-पीना, सोना-जागना, ओढ़ना-पहनना तथा सन्तान पैदा करना आदि स्वार्थ के काम छोड़कर बाकी नैमित्तिक सब काम जिनका फल ईश्वर देता है उन सभी कामों को परोपकार की भावना से करता है वह मनुष्य मरने के बाद मोक्ष यानि ईश्वर के सान्निध्य में एक लम्बें समय तक जिसकी अवधि 31 नील 10 खरब व 40 अरब वर्ष है परमानन्द को प्राप्त करता हुआ रहता है।

अब समझने की बात यह है कि सृष्टि को तीन तत्व चलाते हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृत्ति। तीनों ही अनादि व अनन्त हैं यानि इन तीनों सत्ताओं का न कोई आरम्भ है और न कोई अन्त हैं। इस सृष्टि को ईश्वर ने जीव को उसके अच्छे बुरे कर्मों का फल अच्छे व पुण्य कर्मों का फल सुख के रूप में और बुरे कर्मों का फल दु:ख के रूप में देने के लिए प्रकृति के अणु-परमाणुओं से यह सृष्टि रची। इसमें प्रकृति सत् है यानि इसकी सत्ता है पर यह जड़ है दूसरी सत्ता है जीव जो सत् और चित है यानि जिसकी सत्ता भी है और चेतनता यानि गति भी है तीसरी सत्ता है ईश्वर, वह सत्, चित और आनन्द का सागर भी है यानि ईश्वर की सत्ता भी है, वह चेतन भी है यानि गति भी है और आनन्द का भण्डार है इसीलिए ईश्वर को सच्चिदानन्द भी कहते हैं। ईश्वर ऊपर है, जीव बीच में है और प्रकृति नीचे हैं। जीव जब बुरे कर्म करता है तो वह नीचे प्रकृति की ओर जाता है जिसमें भोग है। तब जीव भोग में फंस कर वह बार-बार जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। इस प्रकार आवागमन में फँसा रहता है। भोग में क्षणिक सुख है पर दु:ख अधिक है इसलिए जीव दु:खों में फंसा रहता है। जब जीव अच्छे कर्म करता हुआ ऊपर की तरफ जाता है तो उसे ईश्वर की प्राप्ति होती है जिसके पास आनन्द ही आनन्द है। इस प्रकार जीव यानि मनुष्य जब अच्छे कर्म करता है और अष्टांग योग द्वारा आनन्द की प्राप्ति करता है और मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्त करता है जिसमें ऊपर लिखी अवधि तक ईश्वर के सान्निध्य में रह कर परम् आनन्द की प्राप्ति करता रहता है और मोक्ष की अवधि के बाद पुन: धरती पर आकर मनुष्य योनि में जन्म लेता है।

अब यहाँ यह जानने की बात है कि योनियां दो किस्म की होती है। एक भोग योनि और दूसरी कर्म योनि। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वनस्पति आदि भोग योनि है। इसमें केवल जीवन जीने के लिए जरूरी काम खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना तथा सन्तान पैदा करना आदि काम जीव करता है। उसका जीव को कर्म का फल नहीं मिलता। दूसरी कर्म योनि है जिसका अच्छे बुरे कर्मों का अच्छा या बुरा फल मिलता है। मनुष्य योनि भोग व कर्म दोनों योनि है। कर्म भी दो किस्म के होते हैं, स्वाभाविक और नैमित्तिक। स्वाभाविक कर्म खाना-पीना, सोना-जागना इन कर्मों का मनुष्य को कोई फल नहीं मिलता। नैमित्तिक कर्म वह होते हैं जो सीखने से जाने जाते हैं। अच्छे व बुरे कर्म सभी नैमित्तिक कर्म है। ये सीखने से जाने जाते हैं। इनका फल ईश्वर अच्छे कर्मों का फल सुख के रूप में और बुरे कर्म का फल दु:ख के रूप में, मनुष्य को देता है। दूसरी प्रकार के कर्म तीन प्रकार के होते हैं। हम जो कर्म कर रहे हैं उनको क्रियमाण कर्म कहते हैं। जो कर्म कर चुके हैं उनको कृत कर्म कहते हैं और जो कर्म करेंगे उनको करिष्माण कर्म कहते हैं। हम तीनों कर्मों में जिनका फल हाथों हाथ मिल गया, वे कर्म समाप्त हो गये। जैसे किसी ने चोरी की और उसल को चोरी के अपराध के छ: महीनों की कैद हो गई तो यह बुरा कर्म यहीं समाप्त हो गया। जिन कर्मों का फल हाथों-हाथ नहीं मिलाता, उनको संचित कर्म कहते हैं। संचित कर्मों का फल ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार कभी भी मिल सकता है। इस जीवन में भी और आगे के अनेक जन्मों में मिल सकता है। यह ईश्वर की न्याय-व्यवस्था पर आधारित है। इस प्रकार कर्म की संक्षिप्त व्याख्या तथा परम आनन्द की संक्षिप्त व्याख्या करके लेख को यही विराम देते हैं।

महात्मा सत्यानंद मुंजाल आर्य कन्या गुरुकुल
शास्त्री नगर, लुधियाना
(पंजाब) दूरभाष:-91-9814629410
(पंजाब का एक मात्र कन्या गुरुकुल)

प्रवेश सूचना-सत्र 2020-2021

छठी कक्षा में (आयु +9 से -11 वर्ष से) कन्याओं के प्रवेश हेतु नियमावली एवं पंजीकरण पत्र (मूल्य केवल 100/- रुपए) भरकर 31.03.2020 तक गुरुकुल के कार्यालय में जमा करवाएं। (पंजीकरण) पत्र डाक द्वारा भी प्राप्त किए जा सकते हैं।)

* कन्याओं की लिखित प्रवेश-परीक्षा 05 अप्रैल 2020 दिन रविवार को प्रात 8:00 बजे होगी।

* सफल कन्याओं का साक्षात्कार एवं स्वास्थ्य परीक्षण भी उसी दिन होगा।

मोहन लाल कालड़ा
(मैनेजर)

हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस मनाया

आर्य समाज मन्दिर कमालपुर होशियापुर में दिनांक 22-12-2019 (रविवार) को स्वामी श्रद्धानंद जी को याद किया गया, उनके धर्म और देश के प्रति बलिदान के उपलक्ष्य में एक विशेष हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। इंजी. श्री कुलदीप राय आहलुवालिया ने अपनी पत्नी के साथ यज्ञ पद को ग्रहण किया। नगर से पधारे आर्य जनों और आर्य वीर दल के बच्चों ने बढ़ चढ़ कर आहुतियां डालीं। तत्पश्चात दयानन्द हाल में कार्यक्रम चला। श्रीमती दुर्गेश नन्दिनी शारदा ने प्रभु भक्ति का सुन्दर गीत सुनाया। गुप्ता परिवार की दो छोटी आयु की बालिकाओं-लवन्या और दीक्षा ने हिन्दी और अंग्रेज़ी में कविता गाकर सुनाई। मंच का संचालन सचिव प्रो. यशपाल वालिया ने किया, उन्होंने मुन्शी राम से बने स्वामी श्रद्धानंद के सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक पहलु पर प्रकाश डाला। प्रो. डा. पी. एन. चोपड़ा ने कहा कि स्वामी श्रद्धानंद जी का बलिदान एक ऐतिहासिक घटना है जिस कारण 23 दिसंबर सन् 1926 के दिन को सदैव याद रखा जायेगा। उन्होंने आगे कहा कि धार्मिक उन्माद के कारण ही स्वामी श्रद्धानंद की जान गई, जातियों में यह सकुंचित भावना समाज और देश के हित में नहीं हो सकती। विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि वे अपने पक्षपात रहित धर्म पर अड़े रहें और स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन से सीख लेकर अपने भावी जीवन को सार्थक बनाएं। प्रिंसीपल कैलाश चन्द्र शर्मा ने मुख्य वक्ता और उपस्थित आर्य जनों को धन्यवाद दिया। शांति पठ के पश्चात सभा विसर्जित हुई, अन्तत:, सभी ने ऋषि प्रसाद को ग्रहण किया।

अश्वनि शर्मा

पृष्ठ 2 का शेअष-अध्यात्म का महत्व

दुष्प्रवृत्तियों को रोक सकेगा।

यह अध्यात्म ही है जो मनुष्य को अद्भुत, भव्य आदर्श, दूसरों के लिये अनुकरणीय व्यक्तित्व तथा परमात्म दर्शन कराता है। जो परमेश्वर की ओर मुख करेगा वह मुक्ति को प्राप्त करेगा और जो कामनाओं के पीछे भागेगा, वह स्वार्थी और पापी बनेगा। यह आवश्यक नहीं है, परन्तु वेदोक्त-वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत्-उत्तम मार्ग अवश्य है कि जो कन्दराओं में, गुफाओं में, पर्वतीय स्थानों में, हृदय रूपी गुफा में, एकान्त में घंटों समाधि लगाता है, वही केवल परमेश्वर का कृपा पात्र बन कर मुक्त हो सकता है। प्रत्युत हम जैसे साधारण जन भी यदि परम पिता परमात्मा को सर्वात्मना समर्पित होकर निष्काम-नि:स्वार्थ कर्म करते हैं, उसकी वेदानुसार आज्ञा का पालन करते हैं, ईश्वर के मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो फल की इच्छा न रखने वाले किसी भी वर्ग के लोग अविद्या मार्ग-सांसारिक मार्ग से, कर्म मार्ग से परमेश्वर के प्रियतम बन कर मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। विद्या और अविद्या दोनों ही मार्ग हमारे लिये खुले हुये हैं। विद्या चाविद्यां च-मन्त्र यही सन्देश देता है। हम अध्यात्म को वाणी से नहीं, कर्म से जीयें, अपनी जीवनशैली ही अध्यात्ममय बना दें। इसके अन्तर्गत वे सभी-जो कर्म वो करते हैं पर फल ही इच्छा नहीं रखते, राग द्वेष विहीन हैं। अहंकार एवं दर्प से जो कोसों दूर हैं, परमेश्वर के सेवक बनकर काम करते हैं। एक डाक्टर, रोगियों की सेवा बिना किसी लाग लपेट के, केवल हित भावना से, रोगी को स्वस्थ करने की इच्छा लेकर अपना कर्तव्य करता है। एक सद्गृहिणी परिवार एवं बच्चों की प्रेम से अपना कर्तव्य समझ कर के परिवार के प्रति अपना समर्पण करती है, एक सेवक उच्च वर्ग या निम्न वर्ग की सेवा यदि परमेश्वर को समर्पित होकर करता है तो ये सब अध्यात्म जीवन का ही निर्वहरण करते हैं।

वेद में भी उपरोक्त बात का ही संकेत है।

पूर्वीचन प्रसितयस्तरन्ति तं च इन्द्रे कर्मणा भुवत्।

ऋ-7-32-13

पहले के बन्धन उसे छोड़ दे हैं जो प्रभु को समर्पित होकर, आध्यात्मिक होकर कर्म करता है। अर्थात् जो प्रभु के निमित्त उनको समर्पित होकर कर्म करता है वह कर्मों के बन्धन से उनके परिणामों से ऐसे छूट जाता है जैसे बच्चे माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हुये दूसरों के दोषोरोपण से बच जाते हैं। उपरोक्त मन्त्र के अनुसार परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करने से मनुष्य कर्मों के बन्धन से पार हो जाते हैं। वे कर्मों से लिप्त नहीं होते। कर्म उनके बन्धन का कारण नहीं बनते। इसलिये भी नहीं बन सकते क्योंकि वह ईश्वराज्ञा का पालन करते हुये श्रेष्ठकर्म करता है। ईश्वराज्ञा कभी बुरी नहीं हो सकती, इसलिये जब कर्म ही बुरा नहीं किया तो वह बन्धन का कारण कैसे बनेगा।

मुक्ति का उपाय यही है कि हम अपने आप को अपना-आपा-छोड़ कर ईश्वर को समर्पित कर दें, नेकी करें, श्रेय ईश्वर को दें। हम फँसते इसलिये हैं कि श्रेय अपने आप लेना चाहते हैं या उससे भी अधिक लेना चाहते हैं या कर्म दूसरों से करवाना चाहते हैं और उसका अच्छा परिणाम स्वयं भोगना चाहते हैं। नेकी कर कुंये में डाल, इस सुप्रसिद्ध उक्ति का यही सब अभिप्राय प्रतीत होता है। हम भगवान के करण-साधन बन जायें। कुर्वन्नेवेह कर्माणि के अनुसार अपनी अन्तिम साँस तक सत कर्मशील जीवन को, अपने को श्रेय न देकर उसी को दे दें। यद्यपि अहंकार का दबाना असम्भव है, जब कि बत-बात पर इतराना बहुत आसान है तो भी यथाशक्ति यदि हम ऐसा कर पायें, ईश्वर को अपना कर्म समर्पित करते हुए दीन हीन को सहारा दे पायें, ईश्वर को अपना कर्म समर्पित करते हुए विचारहीन को विचार दे पायें, अपने जीवन को स्वार्थ नहीं परार्थ समर्पित कर पायें तो निश्चित ही हम पाप के भागी नहीं होंगे। क्योंकि पिता का आज्ञापालक कभी दोषारोपित नहीं होता। इस पथ का अनुसरण करना ही अध्यात्म है। कर्म में लिप्त न होकर, ईश्वर को समर्पित करते हुए इस तरह से हम ऐसी अध्यात्म शैली से मोक्षाधिकारी भी बन सकते हैं। तब हमारा हृदय पुकार उठेगा-

त्वमस्माकं वयं तव-
तुम हमारे हो हम तुम्हारे हैं।
दोनों में अभेद्य सम्बन्ध हो सकेगा।।

पृष्ठ 5 का शेष-''वैदिक अर्थ-मन्त्रणा''

तेरी हत्या ही कर देते। जहाँ लोग दुर्घटनाग्रस्त-असहाय, रोते-बिलखते-कराहते स्त्री-पुरुष-बच्चों के शरीर को नोच कर आभूषण खींच लेते हों, और हर अत्याचार कर अबोध बालकों का अहरण करके प्रतिष्ठित होते हों, वहाँ कौन सी यन्त्रणा सम्भव नहीं है।

इन यन्त्रणाओं से वैदिक मन्त्रणा ही हमें बचा सकती है। अन्याय-पापाचार से धन कमाने वाले यदि इतना ध्यान कर लें-

स चेत्ता देवता पदम्
(ऋ. 1.22.5)

वही सर्वज्ञ सचेतक ईश्वर सभी का पूज्यतम देव है; हमारे सभी कार्यों को गुप्तरूप से देखने वाला है, उसके स्वर्णकर कृपाण कर बनने में समर्थ हैं। बात बढ़ती न जाए, इसलिए उपसंहार स्वरूप वेदान्त के दो मन्त्रों का स्मरण मात्र कराते हुए वक्तव्य को विराम देना समीचीन समझता हूँ।

ईशा वास्यमिद सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद्धनम्।।(यजु. 40.1)
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजी-विषेच्छतम् समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।(यजु. 40.2)

अर्थात् जो व्यक्ति आस्तिक हैं। वे ईश्वर को सर्वत्र व्याप्त जानकर, उससे डरते हैं और समझते हैं कि वह सर्वत्र उन्हें देख रहा है। जो कुछ भी उन्हें मिला है, वह सभी उसी का दिया हुआ है। वे अन्याय-अत्याचार से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण करना नहीं चाहते हैं। वे त्यागपूर्वक भोग द्वारा इस लोक में अभ्युदय एवं परलोक में नि:श्रेयसरूप आनन्द के अधिकारी होते हैं। ऐसे व्यक्ति कर्तव्य कर्म करते हुए ही सौ या न्यूनाधिक वर्षों तक जीने की इच्छा करते हैं। इन व्यक्तियों को अधर्मयुक्त अवैदिक कर्म भी लिपायमान नहीं करते हैं। विद्वान्-जन सम्पूर्ण गीता को इन्हीं दो मन्त्रों का मनोरम व्याख्या ग्रन्थ मानते हैं।

काङ्क्षन्त: कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवता:।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।।
(श्रीमद्भगवत्गीता 4.12)
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।
(श्रीमद्भगवत्गीता 4.14)

योगीराज कृष्ण ने इन श्लोकों में सार रूप में यही उपदिष्ट किया है कि मनुष्य, लोक में देवताओं के प्रति पूजा की भावना से कर्मों की सिद्धि की कामना करते हैं, तो वह उन्हें शीघ्र प्राप्त हो जाती है, उन्हें कर्मों का लेप भी नहीं होता है, क्योंकि उन्हें कर्मफल में आसक्ति नहीं होने से वे कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ते हैं। लेखक के एक सेवा-निवृत्त वरिष्ठ अभियन्ता मित्र की अन्तिम श्वास निकलते-निकलते योग्य युवा चिकित्सक ने बचा ली और उन्हें नवजीवन दे दिया। घर पर जब लेखक उन्हें देखने गया, तब विश्राम शैय्या से फोन पर उनकी बात चल रही थी। वे सुन कम, बोल अधिक रहे थे। बोले-कुर्सी खींचकर बैठ जाइए। अच्छी पेंशन के अतिरिक्त भी उनकी भरपूर नियमित आय है। पुत्र वधु एवं पुत्र की मासिक आय स्त्रोतों का बखान तो उन्हीं के मुख से अच्छा लगता है। इतने पर भी जमा किए गए शेयरों से सम्बन्धित वार्ता देर तक चलती रही और मैं प्रतीक्षा करता रहा। जब यह बात प्रोफेसर ज्ञानेन्द्र वसिष्ठ को बताई गई तो उन्होंने एक हास्य-प्रसंग ही सुना दिया। उन्होंने कहा कि एक धनवान सज्जन को सरसाम रोग हो गया। बहुत तेज ज्वर 106 डिग्री फा. तक पहुँच गया। डॉक्टर औषधि-उपचार एवं बर्फ लगाकर उनकी चिकित्सा करने में लगे थे। वे मूर्छित थे। जब 106 डिग्री से उतरकर उनका बुखार 104 डिग्री पर पहुँचा, तब सभी तीमारदार व डॉक्टर प्रसन्न होकर बोल पड़े, 104 डिग्री हो गया है। इस बीच वे धनवान सज्जन भी होश में आ गए और इस 104 डिग्री की संख्या को सुनकर सन्तुष्ट होकर उन्होंने चर्चा का स्पष्टीकरण किया। बोले अच्छा! शेयर का मूल्य बढ़कर 100 डिग्री से बढ़कर 104 डिग्री हो गया है। डॉक्टर ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा-नहीं शेयर के मूल्य चढ़ने की बात नहीं है। आपका ज्वर 106 से 104 पर उतरने की बात है। यह सुनकर वे धनवान सज्जन फिर से बेहोश हो गए। यही तो अर्थ का अनर्थ है जिसे वेदानुसार समर्थ बनाया जा सकता है।

आर्य समाज बंगा में स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस मनाया

आर्य समाज बंगा में स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस मनाया गया। इस अवसर पर आर्य समाज बंगा के पदाधिकारी हवन यज्ञ करते हुये जबकि चित्र दो में उपस्थित आर्य बहिनें।

दिनांक 5 जनवरी 2020 रविवार को आर्य समाज बंगा में स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस मनाया गया। इस अवसर पर श्री अमित शास्त्री जी पुरोहित आर्य समाज नवांशहर के सान्निध्य में पवित्र वेदवाणी द्वारा चार यजमानों सर्वश्री डा. वी.के. अरोडा नवांशहर, श्री शिवा जी मौर्या चण्डीगढ़, श्री भारत टुटेजा बंगा एवं श्रीमती प्रवीण गांधा तथा श्रीमती स्वदेश रानी अरोड़ा बंगा ने अपने परिवार एवं समाज की सुख शान्ति के लिये यज्ञ में आहुतियां अर्पण की। पूर्णाहुति के उपरान्त श्री अमित शास्त्री जी ने सभी को जलाभिषेक करके आशीर्वाद प्रदान किया। उपरान्त श्री अमित शास्त्री जी ने स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन पर अपने ओजस्वी प्रवचन द्वारा प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का सान्निध्य प्राप्त करके मुंशी राम से स्वामी श्रद्धानंद बने। हमें भी अपने जीवन का सुधार ऐसे महापुरुषों का अनुसरण करके करना चाहिये। उन्होंने कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे अर्थों में युगपुरूष थे। वे जिधर को चलते थे समय उनके पीछे चलता था। जनता उनके संकेत पर चलने को कटिबद्ध थी। स्वामी श्रद्धानन्द ने सभी क्षेत्रों में ऋषि के मन्तव्यों, वचनों, लेखों तथा इच्छाओं को क्रियात्मक रूप देने का बीड़ा उठाया। ऋषि मन्त्रदाता थे तो स्वामी श्रद्धानन्द मन्त्र साधक थे। विदेशी शिक्षा प्रणाली के विरूद्ध आन्दोलन के रूप में उन्होंने गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना की और इस युग में एक बार पुन: ब्रह्मचर्याश्रम पद्धति के आदर्श को सजीव कर दिया। आर्य जाति की रक्षा के लिए भी उन्होंने प्रयास किया। धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ स्वामी श्रद्धानन्द ने राजनीति के क्षेत्र में भी श्रद्धा और पूर्ण विश्वास के साथ कार्य किया। उनकी राजनैतिक गतिविधियां भी उतनी ही प्रभावशाली थी जितनी धार्मिक क्षेत्र की। राष्ट्र के स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में उनका स्थान एक यशस्वी और सेनानायक के रूप में सुरक्षित है। गोरे शासकों के क्रूर अत्याचारों से आतंकित पंजाब कांग्रेस का अधिवेशन बुलाने का किसी में साहस नहीं हुआ तो स्वामी श्रद्धानन्द जी मैदान में उतरे और अमृतसर में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन आयोजित किया। वे स्वयं इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बनें और अपने साहस, परिश्रम और श्रद्धा से इस कार्यक्रम को सफल किया। ऐसे श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति और युगपुरूष स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवस मनाते हुए हम भी उनके श्रद्धामय जीवन से शिक्षा लेकर मानवता के कार्य करें। स्वामी श्रद्धानन्द ने सम्पूर्ण जीवन मानवता के लिए कार्य किया। उन्होंने कहा कि अपने राष्ट्र के कल्याण के प्रति सदैव तत्पर रहना चाहिये। आज हम देख रहे हैं कि अनेक मतमतान्तर बहुत तेजी से फैल रहे हैं। इस पर चिन्तन आर्य समाज के अलावा और कोई नहीं कर रहा है। अन्त में आर्य समाज के प्रधान श्री विनोद शर्मा जी ने सभी आए हुये अतिथियों तथा संगत का धन्यवाद किया। अन्त में सभी ने सामूहिक रूप से लंगर ग्रहण किया और सभी ने वेद मार्ग पर चलने का संकल्प लिया।

-श्याम लाल आर्य मंत्री

वेदवाणी

जीवन के दो मार्ग-भोग और

ईजानश्चितमारु क्षदग्निं न[illegible]द् दिवमुत्पतिष्यन्।
तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान् स्वर्ग: पन्था: सुकृते देवयान:।।
-अथर्व० १८।४।१४

ऋषि:-**अथर्वा**।। देवता-**यम:**।। छन्द:-**भुरिक्त्रिष्टुप्**।।

विनय-क्या तुम देवत्व पाना चाहते हो? उस प्रसिद्ध बड़ी महिमा वाले 'देवयान' मार्ग के पथिक बनना चाहते हो? परन्तु शायद तुम उन देवों के चलने के मार्ग को अभी समझ ही न सकोगे। बात यह है कि संसार में दो मार्ग चल रहे हैं। एक मार्ग से संसार के लोग भोग में, प्रकृति में, प्रवृत्त हो रहे हैं-विश्व के एक-से-एक ऊँचे सुखभोग पाने के लिए दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो रहे हैं।

दूसरे मार्ग वाले लोग भोगों से निवृत्त होकर अपवर्ग की ओर, आत्मा की ओर जा रहे हैं। ये क्रमश: पितृयाण और देवयान हैं। इन दोनों मार्गों द्वारा प्रकृति पुरुष के भोग और अपवर्ग नामक दोनों अर्थों को पूरा कर रही है, परन्तु प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों एक-साथ कैसे हो सकती हैं? इसलिए जो लोग भोगों में विश्वास रखते हुए मुँह उठाये उधर जा रहे हैं, उन्हें लाख समझाने पर भी वे आत्मा की बात नहीं सुनेंगे। देवयान मार्ग तो उन्हें ही भासता है जो भोगों की नि:सारता को अच्छी प्रकार से समझ गये हैं, परम लुभावने बड़े-बड़े दिव्य भोगों को (जिनका हमें अभी कुछ पता भी नहीं है) देखकर जो उनसे भी ऐसे विरक्त हो चुके हैं कि वे अब संसार के सर्वश्रेष्ठ सुखभोग के इन्द्रासनों को छोड़कर ज्ञानस्वरूप तत्त्व की शरण पाने के लिए व्याकुल हो गये हैं-भोगों में अन्धकार-ही-अन्धकार पाकर अब वे ज्ञानमय लोक में चढ़ना चाहते हैं।

यही मार्ग 'स्व:' को, आत्म-सुख को, आत्म-ज्योति को प्राप्त कराने वाला है। यदि तुममें अभी भोगलिप्सा शेष है तो तुम्हें अभी वह जगमगाता हुआ ज्योतिषीमान् मार्ग भी दिखाई नहीं दे सकता। जबकि संसार के लिए आकर्षक और प्रार्थनीय बड़े-बड़े स्वर्गिक भोग और दिव्य विभूतियों के भोग भी आत्महीनता के कारण तुम्हें बिल्कुल बेकार, नि:सत्त्व लगेंगे और यह आत्मप्रकाशशून्य भोगदायक लोक अन्धकारमय दीखने लगेगा।

तब उसी अँधेरे के बीच में सुवर्ण-रेखा की भाँति और फिर विद्युत्-लता की भाँति अन्त में चकाचौंध करने वाली, अनन्त सूर्यों के प्रकाश को भी मात करने वाली ज्योति की भाँति वह देवयान का दिव्य-प्रकाश तुम्हारे लिए उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा। तब भोगवादियों के लाख समझाने पर भी तुम्हें इन भोगों में राग पैदा नहीं होगा।

साभार-वैदिक विनय

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org